International Journal of Multidisciplinary Research and Development

Volume: 2, Issue: 6, 656-657
June 2015
www.allsubjectjournal.com
e-ISSN: 2349-4182
p-ISSN: 2349-5979
Impact Factor: 3.762

प्रवीन शर्मा
शोध छात्र, संस्कृत विभाग,
म.द.वि., रोहतक

Correspondence
प्रवीन शर्मा
शोध छात्र, संस्कृत विभाग,
म.द.वि., रोहतक

भर्तृहरि द्वारा प्रतिपादित शब्दब्रह्म का स्वरूप

प्रवीन शर्मा

इस संसार की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत रहे हैं। बौद्ध मत 'शून्य' तत्त्व में शंकराचार्य ब्रह्मतत्व में तथा स्टीफन हाकिंस 'निर्वात' में इसका समाधान देख रहे हैं।
इस विषय पर आचार्य भर्तृहरि ने सर्वथा नवीन दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया है। वे अपने ग्रन्थ वाक्यपदीय में शब्दब्रह्म का स्वरूप प्रदर्शित करते हैं।
वाक्यदीप की अनादिनिधन आदि चार कारिकाओं, वृत्ति और श्रीवृषभाचार्य की पद्धिति में शब्दब्रह्म का निरूपण किया गया है। यहां इसके सम्बन्ध में कुछ विशिष्ट चर्चा की जाती है।
यह बात अवधेय है कि नागोजी भट्ट ने मंजूषा में जो शब्दब्रह्म की बात की है वह तन्त्राशास्त्राानुमोदित है, व्याकरणागमानुसारी नहीं है। वे कहते हैं –
'युक्तं चैतत् एकस्यैव स्फोटस्य शब्दब्रह्मरूपस्य सर्वशब्दतदर्थोभयोपादनत्वे– नोभयरूपतया उभायोरपि तत्कार्ययोरुभयरूपत्वात्।

क्रियाशक्तिप्रधानायाः शब्दशब्दार्थकारणम।
प्रकृतेर्बिदुरूपण्याः शब्दब्रह्माभवत् परा।।
नित्यत्वंतु यावत् सृष्टिस्थित्या व्यवहारनित्यतया च बोध्यम्।'[1]

शब्दब्रह्मरूप एक ही स्फोट शब्द और उसके अर्थ, इन दोनों का उपादान कारण है और दोनों ही शब्दब्रह्म का कार्य होने के कारा परस्पर उभयरूप हैं। शारदातिलकतन्त्र की राघवभट्ट कृत पदार्थादर्श नामक टीका में लिखा है–
'क्रियाशक्ति जिसमें प्रधान है, ऐसी बिन्दुरूप प्रकृति से शब्द और शब्दार्थ का कारण 'परा' रूप शब्दब्रह्म उत्पन्न हुआ। इसकी नित्यता सृष्टि के सिथति पर्यन्त समझनी चाहिए अथवा व्यवहार–नित्यता से ही यह नितय है।'[2]
भृतहरि ने अनादिनिधन कारिका की वृत्ति में कहा है – 'सर्वास्ववस्थास्वना– श्रितादिनिधनं ब्रह्मेति प्रतिज्ञायते। इस पर श्रीवृषभाचार्य की टीका है – 'न केवलमविवर्तावस्थायां, विवर्तावस्थायामपीति।'
अर्थात् अविवर्त या संवर्तावस्था में तथा विवर्तावस्था में भी शब्दब्रह्म आदि–अन्तरहित–नित्य हैं वह काल और देश के परिच्छेद (सीमा) से शून्य हैं
सभी दर्शनों में कार्य–कारणात्मक तथा विभक्त एवं अविभक्त ब्रह्म की पूर्व और पर अथवा प्रवृत्ति या निवृत्ति की मर्यादा नहीं बांधी गई। अर्थात कार्योदय से पूर्व कुछ नहीं था और कार्यान्त सम्भव होगा – ऐसी प्रवृत्ति और निवृत्ति की सीमा नहीं।' इस पर श्रीवृषभ टीका करते हैं –
'ते प्रवृत्तिनिवृत्तिमर्यादे पूर्वापरे न सङ्ख्यायेते। तदेवमनादिनिधनत्वं विवृत्तस्यापि ब्रह्मणः प्रसिद्धम्।'
अर्थात् कोटि का अर्थ है – मर्यादा। पूर्वा या प्रवृत्तिरूप मर्यादा, जिसमें कार्य (शब्द और अर्थ जगत्) के उदय से पूर्व कुछ न था। अपर या निवृत्ति रूप मर्यादा, जिसका अन्त नहीं। वे प्रवृत्ति और निवृत्ति रूप सीमाएं, जिन्हें पूर्व और अपर कह सकते हैं, नहीं जानी जाती। इस प्रकार विवर्त दशा को प्राप्त भी शब्दब्रह्म का अनादिनिधनत्व सिद्ध है।
ब्रह्म की दो अवस्थाएं हैं; एक सर्वविकल्पातीततत्त्वात्मक और दूसरी समाविष्ट सर्वशक्तिरूप । पहला परब्रह्म या शान्तब्रह्म के नाम से जाना जाता है और दूसरा है शब्दब्रह्म या शबल (चित्र) ब्रह्म।
भर्तृहरि किसी प्राचीन ग्रन्थ का उद्धरण देते हुए कहते हैं –

'शान्तिं विद्यात्मकं तत्त्वं तदुहैतदविद्यया।
त्या ग्रस्तमिवाजस्त्रं या निर्वक्तुं न शक्यते।।
'तथेदममृतं ब्रह्म निर्विकारमविद्यया।
कलुषत्वमिवापंन्नं भेदरूपं विवर्तते।।

विकल्पों से उत्तीर्ण होने के कारण अथवा अविद्या और उसके कार्य के सम्बन्ध से शून्य होने से शान्त, अभेदप्रकाशरूप विद्यात्मक शुद्ध तत्त्व (परब्रह्म) अनिर्वचनीय अविद्या के द्वारा आच्छादित–सा हो जाता है।

जैसे तिमिर रोग से दूषित आंखों वाला व्यक्ति विशुद्ध आकाश को चित्र–विचित्र रेखाओं से भरा हुआ–सा मानता है; वैसे ही यह निर्विकार अमृत ब्रह्म अविद्या के द्वारा मलिन–सा होकर भिन्न–भिन्न रूपों को प्राप्त होता है।

एक ओर सम्पूर्ण प्रपंच (संसार) रूपधारी तथा दूसरी ओर समस्त प्रपंच जाल रूपी मालिन्य से रहित, संसार के बन्धन को काटने वाला लोकों का निमित्तकरण ब्रह्म सर्वोत्कृष्ट रूप से वर्तमान है।

सगुण ब्रह्म को ही वैयाकरण शब्दब्रह्म, रसवादी रसब्रह्म और सौन्दर्यवादी रूपब्रह्म कहते हैं। यह शान्तब्रह्म या निर्गुण–निष्क्रिय ब्रह्म की शबल दशा है। यह अविद्योपहित शब्दब्रह्म ही सम्पूर्ण शब्दार्थ जगत् का हेतु है। यहां शब्दब्रह्म को सामान्य और विशेष शक्तियों से सम्पन्न बतलाया गया है। इसमें भेदप्रपंच नहीं हे, अतः यह अविद्या के संस्कार से रहित है; किन्तु अविद्योपाधिक तो है ही। अविद्या के संस्कार तो जीव में रहते हैं। यह शब्द ब्रह्म की व्याख्या वाक्यपदीय के अनुकूल है। यह ब्रह्म की अवस्था 'समाविष्टं च सर्वाभिः शक्तिभिः' है। इसमें सजातीय–विजातीय भेद नहीं है, किन्तु स्वगत भेद तो है ही। इसे सर्वविकल्पातीत या शान्त अवस्था नहीं कहा जा सकता। भर्तृहरि ने 'धातुसमीक्षा' में वेदान्त की दृष्टि से कहा है –

शुद्धतत्त्व अर्थात् निर्विशेष–निर्गुण ब्रह्म ज्ञाता, और ज्ञेय रूप प्रपंच का हेतु नहीं हो सकता, क्योंकि तब संसार की निवत्ति नहीं होगी; अतः स्पष्ट है कि इसकी जननी माया ही है।

किन्तु माया बिना चेतनाधिष्ठित हुए विश्व का निर्माण कैसे कर सकती है? अतः वहां वेदान्त में ब्रह्म का तटस्थ रूप (सगुण रूप) स्वीकार किया गया है। शुद्धतत्त्व के सम्बन्ध में वेदान्तियों का मत भर्तृहरि ने वाकयपदीय में स्पष्ट किया है। यथा –

> यत्र द्रष्टा च दृश्यं च दर्शनं चाविकल्पितम्।
> तस्यैवार्थस्य सत्यत्वं, श्रितास्त्रय्यन्तवेदिनः'।।[3]

जहाँ द्रष्टा, दृश्य और दर्शन की कल्पना नहीं है, उस अर्थ को ही वेदान्ती लोग सत्य मानते हैं। हेलाराज ने इसे और स्पष्ट किया है – 'ग्राह्यग्राहकादिप्रपंचस्य विकल्पपरिपाटितस्यासत्यत्वात् सर्वप्रपंचसमतिक्रान्तं वाङ्मनसातीततत्त्वमविकल्पं परं ब्रह्मानादिनिधनं सत्यमिति ब्रह्मविदः प्राहुः।'

यही शब्दब्रह्म की शान्त अवस्था अथवा संवर्तावस्था है। यह श्रीवृषभाचार्य का मत है। वे कहते हैं –

'यदाह – अप्रविभागमिति। एवं तावदविवर्तावस्थायां सर्वपरिकल्पातीतत्व– मेवानादिनिधनत्वं कथितम्।

इसे कारणब्रह्म कहा जाता है। अविद्या अथवा काल नामक स्वातन्त्रय शक्ति से उपहित एवं उसकी सहायिका प्रतिबन्ध तथा अभ्यनुज्ञा आदि अनेक शक्तियों से समन्वित कार्यब्रह्म ही शब्दब्रह्म या शबलब्रह्म है। यह ब्रह्म की विवर्तावस्था है। यह भी आदि–अन्त से रहित है। कारण–रूप में ब्रह्म अविभक्त तथा कार्य–रूप में विभक्त कहा जाता है।

वस्तुतः ब्रह्म को शब्द से विशिष्ट करना ही उसे सविशेष बना देता है, अतः शब्दब्रह्मावस्था निर्विशेष या शान्त नहीं है और स्पष्ट करने के लिए मल्लवादी का ग्रन्थ उद्धृत किया जाता है। सत्ता, महानात्मा, प्रतिभा, अविद्यायोनि, भावविकार–प्रकृति और पश्यन्ती–ये शब्दब्रह्म के पर्याय हैं। यद्यपि परावाक् का नामतः वाक्यपदीय में कहीं उल्लेख नहीं है, फिर भी परपश्यन्ती या पराप्रकृति के द्वारा उसे जाना जा सकता है। पश्यन्ती और परा में मूलतः कोई भेद नहीं है। हेलाराज कहते हैं –

'संविच्च पश्यन्तीरूपा परावाक् शब्दब्रह्ममयी इति ब्रह्मतत्त्वं शब्दात् पारमार्थिकान्न भिद्यते।'[4]

द्रव्यसमुद्देश, कारिका 11 की व्याख्या में परब्रह्म को 'संवित्' के नाम से हेलाराज ने कहा है, जो 'नेति नेति' भावना द्वारा निर्दिष्ट है।

संवित् भी शब्दब्रह्ममयी पश्यन्ती रूप परावाक् है; इस प्रकार ब्रह्मतत्त्व पारमार्थिक शब्द (शब्दतत्त्व या शब्दब्रह्म) से भिन्न नहीं है। पराप्रकृति शब्दब्रह्म की सुषुप्ति दशा है और प्रकृति पश्यन्ती या सत्तावस्था ही जागरणोन्मुखी स्थिति। इसी को प्रतिभा कहते हैं। मैत्रायणी उपनिषद् में कहा गया है – एवं ह्याह्–

> 'द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत्।
> शब्दब्रह्मणि निष्णतः परं ब्रह्माधिगच्छति।।[5]

दो ब्रह्म ज्ञातव्य हैं – एक शब्दब्रह्म और दूसरा परब्रह्म। शब्दब्रह्म को जानकर व्यक्ति परब्रह्म को प्राप्त करता है। महाभारत में भी यह श्लोक मिलता है, जो इस प्रकार है –

> 'वेदाः प्रमाणं लोकानां न वेदाः पृष्ठतः कृताः।
> द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत्।।
> शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति।
> शरीरमेतत् कुरुते यद्वेद कुरुते तनुम्।।

यहाँ शब्दब्रह्म का अर्थ वेद का कर्मोपासनाकाण्ड है और परब्रह्म का प्रत्यगात्मा, जो प्रसङ्गतः उचित है। वेदों को भी उपचारतः शब्दब्रह्म कहा जाता है। मूल वेद ओंकार ही है और यही शब्दब्रह्म भी। वर्ण–पदक्रमात्मक वेद उक्त ओंकाररूप शब्दब्रह्म की प्राप्ति का उपाय और उसका अनुकरण या प्रतिच्छन्दक है – प्रतिरूप है।

शब्दब्रह्म भोक्ता, भोग्य और भोगात्मक सृष्टि का महाबीज है। महाप्रलय में ब्रह्माण्डीय सम्पूर्ण चराचर जगत् शब्दब्रह्म में ही सूक्ष्मरूप से स्थित होता है; यही उसकी संवर्तावस्था है। यहां एक अवधेय है कि कोटि–कोटि ब्रह्माण्डों का युगपत्प्रलय कभी नहीं होता, अतः भर्तृहरि ने सभी अवस्थाओं में उसे अनादिनिधन कहा है। शान्तिब्रह्म से किश्चित् चलितावस्था ही शब्दब्रह्म है; और यहीं से सृष्टि का उद्भव और विलय होता है, अतः यही संवर्तावस्था है। इसी के अन्तर्गत जब स्थूल सृष्टि का अबहिस्तत्त्व के रूप में परस्पर विलक्षण प्रसार होता है, तब उसे ही विवर्तावस्था कहा जाता है।[7]

मूलतः शान्तब्रह्म और शब्दब्रह्म में कोई अन्तर नहीं है, इसी दृष्टि से पीछे शान्तब्रह्म को ही संवर्तावस्था कहा गया है –

> शब्दब्रह्म चिदानन्दमधिष्ठानमुपास्महे।[8]
> यस्य वर्णाः पदं वाक्यं विवर्ताः संचकासति।।1।।

संदर्भ सूची

1. शक्तिनिरूपण, पृ. 41
2. आगम सममिति कलकत्ता, संस्करण, पृ. 19
3. सम्बन्ध समुद्देश, 72
4. वाक्यपदीय म (शिवशंकर अवस्थी) भूमिका भाग
5. प्रपाठक 6, कण्डिका 22
6. शांतिपर्व, अध्याय 270
7. वाक्यपदीयम् (शिवशंकर अवस्थी) भूमिका भाग
8. शेषश्रीकृष्ण स्फोटतत्त्व निरूपण